वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

एक महान समस्या और उसका निराकरण

-पूज्य भाईश्री शशीभाई

इस विश्वमें समस्याके असंख्य प्रकार हैं। परन्तु जीवकी सबसे भारी समस्या अनंतकालसे जन्म-मरण करके परिभ्रमण हो रहा है, सो है। विधिकी सबसे बड़ी विचित्रता भी यह है कि, जीव छोटी-मोटी समस्याओंकी चिंतासे घिरा हुआ रहता है अतएव महान् समस्याका अनादिसे विस्मरण हो रहा है। अरे ! ऐसी कोई समस्या है और उसका समाधान प्राप्त करना आवश्यक है-उसकी भी अधिकांश जीवोंको खबर नहीं है।

जिसका होनहार अच्छा है वैसा कोई जीव, किसी महत्पुण्योदयसे सत्संगमें आता है तब उसे समूचा संसार केवल दुःखमय लगता है; तथा 'मेरा' परिभ्रमण हो रहा है व अब भी परिभ्रमणके कारणरूप परिणाम वर्त रहे हैं-ऐसा लगने लगता है; और उस जीवको परिभ्रमणसे छूटने का भाव आता है अर्थात् अपना हित करनेका भाव जगता है। तब वह जीव अपने दोषकी ओर दृष्टि करता है। उसमें उसे यों लगता है कि-'मेरा परमें' अपनेपनका भाव है, वही परिभ्रमण करवाता है। परमें निजत्वके भावके कारण मैं परकी चिंतासे अबतक घिराया हुआ रहा और इसीलिये परिभ्रमणकी समस्या विस्मृत रही; यह बड़ी भारी गंभीर भूल हुई।'-ऐसी यथार्थ समझसे, वह स्वयं तय करता है कि 'मुझे अब किसी भी क़ीमत पर परिभ्रमण नहीं करना है।'-इस निश्चयसे वह अपने दोष देखना शुरू करता है तब अपने दोष दिखाई देने लगते हैं और ज्यों-ज्यों वैसा प्रयास बढ़ता है त्यों-त्यों सूक्ष्मता आने लगती है। तथापि उदय-प्रसंगमें जो कुछ राग-द्वेष, हर्ष-शोक हुआ करता है तथा जितना कुछ विभावरस दिखता है, उसका पश्चाताप इस प्रकार से होता है कि-मुझे तो परिभ्रमण से छूटना है तिसपर भी परिभ्रमण करानेवाले ऐसे परिणाम होते है सो मुझे नहीं चाहिए। यों करते-करते सहजरूपसे उसकी वेदना शुरू हो जाती है।

उक्त प्रकारसे वेदना बढ़कर तीव्र होती है तब अधिक उदासीनता वर्तती है। और उसका कहीं भी मन नहीं लगता। खाना-पीना, किसी के साथ मिलना-जुलना, बातचीत करनी नहीं रुचती। कोई आ जाए तो वह बोझरूप लगे और बेचैन.. बेचैन रहा करे। वह बेचैनी यह तक बढ़ जाती है कि निद्रा भी नहीं आती। ऐसी बेचैनी और वेदनाके दौरान ऐसा निर्णय होता है कि 'अब मुजे इस संसारमें से कुछ नहीं चाहिए।' जो कोई पदार्थ जुटानेकी वृत्ति उठे तो वह आकुलतामय लगती है। और जो-जो इच्छायें हों उनमें आकुलताका ही अनुभव होता है। ऐसी तीव्र वेदनाके कालमें चारों प्रकारके (-समाज, कुटुम्ब, शरीर और संकल्प-विकल्प) प्रतिबंध शिथिल हो जाते हैं। अधिकतर यह वेदना बहुत दिन चलती है, जिसके कारण अंतःकरण की शुद्धि होती है। दोचार दिन चली हुई वेदना प्रायःकर यथार्थ नहीं होती किंतु वह भावुकतामय होती है। परन्तु लंबे समय तक चली हुई वेदना, अत्यंत उदासीनतापूर्वक, पूर्ण शुद्धिके लक्ष्यमें परिणमित होती है।

ऐसी वेदनावाले मुमुक्षुके परिणमनको देखकर भी दूसरे जीवको तद्रूप परिणमन आता है, तब उसे ऐसा दिखाई देता है कि - इस जीवको परिभ्रमणकी कैसी थकान लगी है ! मुझे तो अब भी संसारमें रस पड़ता है, इसलिये अब भी मैं परिभ्रमणसे नहीं थका हूँ, इत्यादिक विचारणासे उसपर असर आता है। और इस भाँति वह जीव परिभ्रमणकी यथार्थ वेदनामें आता है।

ऐसे समयमें उसको एक मार्गदर्शक पुरुषकी आवश्यकता पड़ती है। उसमें स्वयंको यों लगता है कि 'मैं

(शेष अंश पृष्ठ-७ पर)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४९: अंक-३०२, वर्ष-२५, फरवरी-२०२३

श्रावण शुक्ल ३, गुरुवार, दि. २१-७-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-९५,९६ प्रवचन-४०

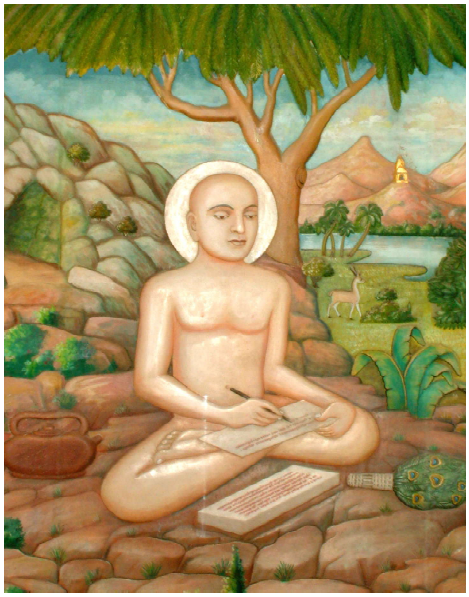

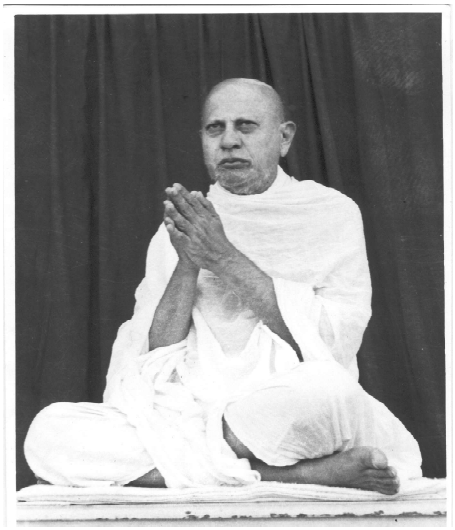

शुद्धस्वरूप की भावना भाने से आत्मा शुद्ध होकर परमात्मा हो जाता है। इस शुद्ध परमात्मा का प्रत्यक्षपने वेदन होने पर, प्रत्यक्ष होते... होते... पूर्ण होने पर केवलज्ञान हो जाता है - ऐसा कहते हैं। जिनवाणी के अभ्यास का सम्यक् प्रकार से उद्यम करके अपने आत्मा को यथार्थ जानने का हेतु रखना। हेतु तो यह है 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ...' भगवान आत्मा की परमेश्वरता.... परम ईश्वरता... परम ईश्वरता... की दृष्टि उसका ज्ञान और उसकी रमणता में आवे, वह उसका सार है। समझ में आया? अब यह मार्ग अभी नहीं ऐसा कहते हैं। अरे...प्रभु! भाई! यदि ऐसा पंचम काल में न हो तो अभी धर्म ही नहीं है तो धर्म नहीं ऐसा नहीं होता, भाई! धर्म नहीं ऐसा नहीं और धर्म हो तो वह इस प्रकार धर्मी के आश्रय से होता है, स्व के आश्रय से हो वह धर्म कहा जाता है। आहा...हा...!

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर सीमन्धर प्रभु विराजमान हैं, उनके ज्ञान से कौन सी बात गुप्त है? तीन-तीन ज्ञान के धनी शकेन्द्र आदि भगवान को वन्दन करने जाते हैं, उनके ज्ञान में भी कुछ कमी नहीं है। शास्त्र में आता है न कि अमुक दक्षिण के देव होते हैं, अमुक उत्तर के देव होते हैं, यह मुख्य-मुख्य बड़ी बातें हों, वे इन्द्रों को पहुँचाते हैं - ऐसा पाठ है। भाई! पण्डितजी! क्या कहलाता है? लोकपाल, लोकपाल है न? शास्त्र में लेख है। इस भरतक्षेत्र आदि में बड़ी-बड़ी बातें हों, वे

लोकपाल इन्द्र को पहुँचाते हैं कि ऐसा है, ऐसा है। लोकपाल की बात आती है। चार लोकपाल हैं न? यहाँ सरकार को पहुँचाते हैं या नहीं? दूसरे के यहाँ तुम्हारी युद्ध होने की बात चलती है, हाँ! अमुक... अमुक... षड़यन्त्र ऐसा कुछ कहते हैं न? यह सब उनके गुप्तचर हों, वे पहुँचाते हैं। जासूस कहलाते हैं। इस प्रकार यह चार जासूस हैं। चार दिशा के लोकपाल। वे इन्द्र को बड़ी-बड़ी बात (पहुँचाते हैं)। बड़ी फेरफारवाली बात भी उन्हें कान में तो पड़ गयी है। समझ में आया? इन्द्र के अवधिज्ञान में वह बात आयी हुई है, भगवान के ज्ञान में आयी हुई है।

भाई! आत्मा अपने स्वभाव को पहुँचे, प्राप्त करे, रुचि करे, उसे जाने, उसका वेदन करे, तब उसे मोक्ष का मार्ग हुआ कहा जाता है, उसे सामायिक और प्रौषध कहा जाता है। कामदार! आहा...हा...! भाई! ऐसी तेरे घर की मीठी बात तुझे क्यों नहीं रुचती? भूख लगी हो और इसे ऐसा पोले से पोला मक्खन और पोले से पोला बड़ा अथवा खाजा दे और भूख लगी हो वह इसे कैसे नहीं रुचेंगे? इसी प्रकार जिसे यह आत्मा... अरे...! यह आत्मा कौन है? कैसा है? ऐसी जिसे जिज्ञासा और रुचि हुई हो, उसे यह बात रुचे बिना नहीं रहती। भूख लगनी चाहिए।

मुमुक्षु - शीघ्रता करता है।

उत्तर - हाँ, खाने में शीघ्रता करता है। यह तो यहाँ दृष्टान्त है। कहो, समझ में आया?

मिट्टी का दृष्टान्त दिया है, व्यवहारनय से पानी मैला दिखता है, मिट्टी मैली दिखती है परन्तु मिट्टी की मलिनता से जल की स्वच्छता भिन्न है, मलिनता से जल की स्वच्छता पृथक् है, समझ में आया? निश्चय से देखो तो मिट्टी, मिट्टी है, पानी, पानी है। पानी और मिट्टी दोनों एक हुए नहीं हैं।

इसी प्रकार आत्मा, कर्म पुद्गलों के संयोग से देखो तो उसे सम्बन्ध व्यवहार से है। स्वभाव से देखो तो उसे सम्बन्ध है ही नहीं। भगवान चैतन्य जैसे जल स्वच्छ पानी के स्वभाव से देखो तो वह स्वच्छ है, वैसे ही भगवान आत्मा के स्वभाव से देखो तो उसे राग और कर्म का लेप है ही नहीं - ऐसी दृष्टि से आत्मा को देखना, उस दृष्टि को सत्यदृष्टि कहते हैं। ज्ञान करने के लिए व्यवहार वस्तु है, राग है, कर्म है, वह ज्ञान करने के लिए है, जानने के लिए है, आदरणीय तो यह है। समझ में आया?

शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा परमात्मारूप दिखता है, वही दृष्टि ध्याता के लिए परम उपकारी है। पानी को स्वच्छ देखना, यही पानी की स्वच्छता के स्वरूप का सच्चा ज्ञान है; वैसे भगवान आत्मा को मैल और कर्मरहित देखना - ऐसा स्वभाव उस दृष्टि और ज्ञान को सच्ची दृष्टि और ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? दो नय का ज्ञान कहते हैं। व्यवहारनय से नव तत्त्वों को जानना... समझ में आया? उसमें अशुद्धता भेद से वह जानना परन्तु उससे रहित शुद्ध को जानना, वह उसका प्रयोजन है। समझ में आया? फिर द्रव्यसंग्रह और तत्त्वार्थसूत्र का अभ्यास करना, यह सब बात की है।

पुरुषार्थसिद्धिउपाय का दृष्टान्त दिया है। यह बहुत सरस है। देखो, मुनिराजों ने अज्ञानियों को समझाने के लिए असत्यार्थ को अथवा अशुद्ध पदार्थ को कहनेवाले व्यवहारनय का उपदेश किया है। अबुधबोधनार्थे....। अबुधस्य बोधनार्थ मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्। अशुद्ध आदि द्वारा उसे समझाया है कि भाई! यह अशुद्धता उसकी पर्याय में है, वस्तु में नहीं। उस द्वारा उसे समझाया है। अज्ञानी, जिसे वस्तु का स्वरूप शुद्ध अखण्ड आनन्दस्वरूप आनन्दकन्द जिसकी नजर में अशुद्धता की आड़ में आयी नहीं, अशुद्धता की आड़ में आया नहीं, उसे समझाते हैं कि देख भाई! अशुद्धता है अवश्य परन्तु वह स्वरूप में नहीं है। उस अशुद्ध से शुद्ध (स्वरूप) भिन्न है - ऐसा अज्ञानियों को व्यवहारनय से समझाया गया है।

परन्तु जो केवल व्यवहारनय के विस्तार को जाने.... व्यवहारनय के विस्तार को जाने - उसके भेदों को, उसके सम्बन्ध को, उसके राग को, उसके पुण्य-पाप को, उसके प्रकृति के परिणाम को, उसके सब विस्तार को जाने परन्तु

निश्चयनय के नियम को न जाने.... परन्तु भगवान आत्मा उस राग और भेद व निमित्त के सम्बन्धरहित है। निमित्त अर्थात् संयोगी चीज, राग अर्थात् संयोगी भाव और मन के सम्बन्ध से गुण-गुणी के भेद का विकल्प उत्पन्न होना, वह भी व्यवहार है, उस सब व्यवहार से भगवान आत्मा भिन्न है, यह निश्चयनय का नियम है। निश्चयनय का यह नियम है। उसका यह नियम है कि वह पर से भिन्न बतावे और शुद्ध स्वरूप को स्वयं पहचाने, समझ में आया? व्यवहार का यह नियम है कि वह संयोग को बतावे, राग को बतावे, भेद - गुण-गुणी का भेद वह व्यवहारनय बतलाता है, इतना... आदरणीय निश्चयनय का नियम यह है कि इससे तू भिन्न।

मुमुक्षु - दो में से मानना क्या?

उत्तर - कहा न, यह मानना, जानना, मानना। और वह (व्यवहार) है - इतना जानना कि अभी इतना बाकी है, जानना अवश्य, आदरना यह, जानना उसे। इस प्रकार दोनों नयों को ग्रहण किया कहा जाता है।

मुमुक्षु - दोनों को आदरना नहीं?

उत्तर - आदरे क्या? धूल!

मुमुक्षु - दो नय भगवान ने कहे है न?

उत्तर - भगवान ने कहे हैं।

मुमुक्षु - उपादेय चाहिए न।

उत्तर - उपादेय किस प्रकार? नय है तो नय का विषय है, नय विषयी है, उसका विषय है - ऐसा जानना चाहिए परन्तु वह विषय आदरणीय है - ऐसा नहीं। आदरणीय हो तो दो नय कैसे रहे? दो नय क्यों रहे? दो ज्ञान कैसे रहे? ज्ञान के विषय दो अलग कैसे पड़े? दो के फल बिना दो भिन्न कैसे रहे? इसे न्याय से तो विचार करना पड़ेगा न? दो (नय) पड़े उसका अर्थ क्या हुआ? एक नय अभेद को बताता है और एक नय उससे विरुद्ध ऐसे भेद को बताता है, दो नय विरुद्ध हो गये। आहा...हा...!

मुमुक्षु - अनेकान्त....

उत्तर - अनेकान्त हुआ न! अभेद भी है, भेद भी है। अभेद में भेद नहीं, भेद में अभेद नहीं - इसका नाम अनेकान्त है, वरना तो दो एक हो जाएँगे, व्यवहार-निश्चय दोनों एक हो जायेंगे। व्यवहारनय और निश्चयनय का स्वरूप एक हो जाए तो व्यभिचार हो जाए, एक भी नय न रहे। एक नय की वास्तविकता जो है, वह न रहे तो दूसरे नय की वास्तविकता नहीं रहेगी। वरना नय का स्वरूप ही नहीं रहेगा। आहा...हा...! पंचाध्यायी में कहा है न? यदि व्यवहारनय का विषय निश्चय में जायेगा तो नय का स्वरूपी नहीं रह सकेगा। अतिक्रान्त हो जायेगा, व्यवहार में निश्चय का कार्य किया तो निश्चय नहीं रहा, दोनों नय का नाश हो जायेगा। अरे... वस्तु भी इस प्रकार है; इस कारण भगवान की वाणी में ऐसा आया है।

भाई! तू वस्तु है, पूर्ण शुद्ध अखण्ड आनन्द यह निश्चय का सत्य का विषय है और उसके साथ जितना राग, संयोग है, वह व्यवहारनय का विषय है। यह दो ज्ञान हैं और एक नय का जो विषय है, उससे दूसरे नय का विषय अलग है। अलग न हो तो दो नय पड़े कैसे? एक यह आदरणीय है तो वह आदरणीय नहीं; जानने योग्य है।

इस कारण भगवान अमृतचन्द्राचार्यदेव ने कहा तदात्वे जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहा है। पाठ में यह है, इसलिए सब तर्क देते हैं, देखो! 'अपरमे ट्ठिदा भावे' 'सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं। ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।। १२।।' जो निचली भूमिका में है, उसे व्यवहार का उपदेश देना... परन्तु ऐसा वहाँ नहीं कहा है। 'ववहारदेसिदा' का अर्थ अमृतचन्द्राचार्यदेव ने ऐसा किया है। यह 'ववहारदेसिदा' शब्द है, उसका वाच्य - अभेद स्वरूप आत्मा की दृष्टि और ज्ञान हुआ, तब उसे जितना राग और संयोग में अथवा शुद्धता के अंश बढे.या राग के (अंश) घटे, ऐसे भेद को जानना, वह 'यदात्व' काल में प्रयोजनवान है। यह 'ववहारदेसिदा' क्या? इसका अर्थ अमृतचन्द्राचार्य ने यह किया है - इस वाचक का वाच्य है। तब दूसरे कहते हैं, व्यवहार का उपदेश देना... वहाँ उपदेश की व्याख्या ही नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...! भगवान आत्मा पूर्ण प्रभु अपनी

पूर्ण निश्चय दृष्टि से देखे तो मैल, भेद और संयोगरहित देखता है, यह निश्चयनय का नियम है। व्यवहारनय का यह नियम है, भेद और आश्रय वह निमित्त को देखता है। है, है इतना अवश्य; यदि वह न हो तब तो सम्पूर्ण तीर्थ और गुणस्थान के भेद नहीं रहते और निश्चय न रहे तो स्व आश्रय के बिना तत्त्व का लाभ कैसे होगा? आहा...हा...! समझ में आया? यह बात की।

यहाँ कहते हैं नियम को न जाने वह जिनवाणी का यथार्थ ज्ञाता नहीं हो सकता। निश्चयनय के नियम को न जाने, भगवान कथित आत्मा निश्चय का विषय, उस वस्तु को न जाने वह ज्ञाता-दृष्टा नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया? बालक को विलाव दिखाकर सिंह बतलाया जाता है। यदि उसे सिंह का ज्ञान न कराया जाए तब तो बालक विलाव को ही सिंह समझता रहेगा। विलाव को ही सिंह मानेगा - ऐसा व्यवहार बतलाते अवश्य हैं, जो यह आत्मा है, यह आत्मा है - एकेन्द्रिय आत्मा, दो इन्द्रिय (आत्मा) परन्तु यह एकेन्द्रिय-दोइन्द्रियपना वस्तु में नहीं है, ऐसा व्यवहार में बताते हैं परन्तु इसे भी मान ले तो निश्चय को नहीं समझता तो वह उपदेश के योग्य नहीं है। ऐसा यहाँ कहते हैं।

व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति देखो! पहले में आया था, ऐसा कहीं कहा नहीं है कि निश्चय का स्वरूप जाने और पहचाने, उसे देशना देने योग्य नहीं है परन्तु अकेले व्यवहार को जाने और निश्चय को न जाने, वह देशना सुनने के योग्य नहीं है - ऐसा कहा है। आहा...हा...! समझ में आया? निश्चय का ज्ञान न कराया जाये तो निश्चय को न जाननेवाला व्यवहार को ही निश्चय तथा सत्य-मूल पदार्थ समझ लेगा। देखो, मूल पदार्थ समझ लेगा। निश्चय, सत्य और मूल। व्यवहार को निश्चय, व्यवहार को मूल पदार्थ और व्यवहार स्वयं सत्य मान लेगा।

एक बार कहा था न 'कुआवडा...' 'कुआवडा' नहीं, वह मच्छर? राजकोट से पाँच गाँव 'कुआवडा' वहाँ सब आये थे, वहाँ विद्यालय में उतरे थे, वहाँ एक मच्छर का चित्र बना हुआ था। मच्छर... मच्छर होता है न? लम्बे पैर, इतने-इतने चार (पैर)। बालक को बताते थे कि देखो! भाई! मच्छर ऐसा होता है। छोटे को स्पष्ट बतलाने को उसके पैर लम्बे करके बतलाये। उसमें उस गाँव में आया हाथी, उसने कभी मच्छर ऐसा नजर से निश्चित नहीं किया था, अत: कहने लगा मास्टर साहब देखो! आप उस दिन मच्छर बतलाते थे, वह आया। वहाँ ऐसा चित्र देखा, हाँ! वहाँ स्कूल में था, छोटा शरीर और पैर लम्बे इसलिए वह बतलाता है कि यह पैर बारीक-बारीक लम्बे हैं, यहाँ ताँकना हो वह सब लम्बा करे तो बता सके। लम्बा करके बताया इसलिए उसने हाथी देखा नहीं था और मच्छर का पता नहीं कि कितना होता है? मच्छर को ऐसा करके बतलाया था (इसलिए कहने लगा) मास्टर साहब आप मच्छर बतलाते थे, वह मच्छर आया। इस प्रकार व्यवहार को निश्चय मान लिया। बनी हुई बात है, हाँ! बनी हुई बात है।

मुमुक्षु - .....

उत्तर - ख्याल में हो वह आये न!

परभाव का त्याग कार्यकारी है

जो णवि जाणइ अप्पु परू णवि परभाउ चएइ।
सो जाणउ सत्थहँ सयल ण हु सिवसुक्खु लहेइ।। ९६।।

निज-पर रूप के अज्ञ जन, जो न तजे परभाव।
ज्ञाता भी सब शास्त्र का, होय न शिवपुर राव।।

अन्वयार्थ - (जो अप्पु परू णवि जाणइ) जो कोई आत्मा को व परपदार्थ को नहीं जानता है (परभाउ णवि चएइ) व परभावों का त्याग नहीं करता है (सो सयल सत्थइं जाणइ) वह सर्व शास्त्रों को जानता है तो भी (सिवसुक्खु ण हु लहेइ) मोक्ष के सुख को नहीं पावेगा।

९६। परभाव का त्याग कार्यकारी है। लो समझ में आया? ९५ में ऐसा कहा, भगवान! यदि तुझे हित करना हो तो आत्मा जिस स्वरूप से है, उसे जान, उसे रुचि में ले और उसका अनुभव कर तो चारित्र हुआ, स्वरूपाचरण हुआ, तीनों हो गये। समझ में आया? और वही अनुभव मोक्ष का मार्ग है। तब यहाँ कहते हैं ऐसे अनुभव में

परभाव का त्याग होता है। यह बात करते हैं, देखो! परभाव का त्याग कार्यकारी है।

जो णवि जाणइ अप्पु परू णवि परभाउ चएइ।
सो जाणउ सत्थहँ सयल ण हु सिवसुक्खु लहेइ।। ९६।।

जो कोई आत्मा को और पर-पदार्थ को नहीं जानता... जो कोई इस भगवान आत्मा पूर्ण परमात्मस्वरूप अभेददृष्टि से नहीं जानता और परभाव को नहीं जानता कि यह पुण्य और पाप, राग और द्वेष मेरे आत्मा के स्वभाव से भिन्न चीज है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव शुभ इस आत्मा से भिन्न चीज है। कभी सुना नहीं होगा। कामदार! हो, यह सुना हो, बापू!

मुमुक्षु - हमें क्या करना?

उत्तर - करना यह। नहीं किया? पूरा आत्मा पड़ा है न? नहीं कैसे? शाश्वत् अनन्त गुण का धाम आत्मा है, परमात्मा यह पुकार करते हैं कि त्रिकाल ऐसा का ऐसा आत्मा है, भाई! तेरी नजर के आड़ से तुझे तेरा निधान नहीं दिखता। समझ में आया? लोग नहीं कहते 'काँख में लड़का और ढूँढने जाए गाँव में' - ऐसा कुछ कहते हैं या नहीं? क्या कहलाता है? कमर... कमर। हाथ ऐसे और ऐसे रह गया, भूल गया, ए... लड़का कहाँ गया? हाथ ऐसा का ऐसा रह गया और अकड़ गया। लड़का ऐसा रह गया, लड़का कहाँ गया? कहाँ गया लड़का? ढूँढने जाए... परन्तु यह रहा यहाँ, देख तो सही! ऐसा का ऐसा रहा करे, हाथ ऐसा-ऐसा हो गया इसलिए हाथ में लटक-लटक ऐसा नहीं रहा। ऐसा का ऐसा हाथ पकड़ गया और वह लड़का अन्दर में रह गया। ए... लड़का कहाँ गया? लड़का कहाँ गया? यहाँ तो देखता नहीं, यह रहा अन्दर। दृष्टान्त आता है या नहीं? तुम्हारे (हिन्दी में) आता है या नहीं? 'बगल में लड़का गाँव ढूँढे।' हमारे काठियावाड़ में ऐसा (कहते हैं) 'काँख में छोकरू ने गोते बाहर मां।' दृष्टान्त तो एक ही होते हैं न! भाषा में अन्तर होता है।

(प्रवचनका शेष अंश अगले अंकमें...)

(पृष्ठ-२ से आगे..)

संसारसमुद्रके मध्यमें डूब रहा हूँ। उसमें से सत्पुरुष मुझे डूबते हुएको बचा सकेंगे। इसलिये ज्ञानीपुरुषके आश्रयसे ही मेरा परिभ्रमण मिटेगा। अन्य कोई उपाय है ही नहीं।' ऐसी सूझ अंतरसे आती है। जब ऐसी सूझ आती है तब प्रायः उसको ज्ञानीपुरुषका मिलाप होता है। तथा परमसत्संग-योगमें घनिष्ट परिचय साधकर उसको ज्ञानीपुरुषका अंतरपरिणमन दिखाई देता है। और उनके हृदयमें बिराजमान परमात्माके दर्शन होते हैं जिसके कारण ज्ञानीपुरुषमें परमेश्वरबुद्धि होती है। सर्वार्पणबुद्धिपूर्वक अपूर्व स्नेह व अचल प्रेमसे वह सत्संगको आराधता है। एवं सत्पुरुषके प्रति परम प्रेमार्पणभाव वर्तनेसे परिणामोंकी निर्मलता आती रहती है। जो कदाचित् उपकारी सत्पुरुषके वियोगमें एक घड़ी बीतानी पड़े तो अत्यंत कष्टपूर्ण लगता है। तथा सत्संगके संयोगमें या वियोगमें, परिभ्रमण मिटानेका, निरंतर लक्ष्य और प्रयास चलता है।

इस भूमिकामें अमुक अंशमें निर्मलता आनेसे अंतरसे जो-जो असमाधान होते हैं उनका-समाधान निर्मलताके कारण सहज आता है। तथा आगे क्या करना? उसकी सूझ आने लगती है, ज्ञान में विवेक आने लगता है और वह जीव आगे बढ़ता जाता है।

ऐसा नहीं कि मात्र प्रतिकूलता देखकर ही परिभ्रमण दिखाई पड़ता है; किंतु अनुकूलतामें फँसते हुए जीवोंको देखकर भी वह परिभ्रमणका ही कारण दिखता है; जिससे अपने हितरूप कार्य करनेमें शीघ्रतावाले परिणाम रहा करते हैं। अर्थात् वह जीव शिथिल होकर बैठा नहीं रहता, बल्कि उसको स्वकार्यकी उत्कटता व लगन लगती है एवं परिपूर्ण निर्दोष होनेका निर्धार सहज होता है; जिसमें दोषका एक कण (अंश) भी कलंकरूप जानकर 'वह नहीं चाहिए' और तदर्थ ज्ञानीपुरुषकी आज्ञासे चलनेकी वृत्ति रहती है। एवं ज्ञानीपुरुष का परिणमन देखकर स्वयंको भी वीर्योल्लास आता है जिसके कारण अपने आत्महितकी निःशंकता उत्पन्न होती है। ॐ शांति

श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१२८ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई का कोयम्बतुर में हुआ प्रवचन दिः २५-१२-१९९७

(श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत, पत्रांक १२८ चल रहा है।)

खंभातके मुमुक्षु भाईयों पर पत्र लिखा है। लिखनेका आशय यह है कि जीवको जन्म-मरणसे छूटना है, भवभ्रमणसे मुक्त होना है, लेकिन जीवको मुक्त होनेका उपाय क्या है वह पता नहीं है। इसलिये इस विषयमें अकुलाहट होती है, और जीव बहुत उलझनमें आता हैं। उस जीवकी योग्यता ऐसी होती है कि यह भवभ्रमण मुझे नहीं चाहिये। भवभ्रमणमें बहुत दुःख है, यह बात उसको महसूस होती है। विचार होना एक बात है, महसूस होना दूसरी बात है, (उसको यह बात) महसूस होती है। ऐसी कोई योग्यता होती है (कि) उस जीवको इस प्रकारके विचार चलते हैं। अंतरात्मामें से ऐसे विचार आते हैं। उसको ऐसे-ऐसे विचार जो चलते हैं, उसे परिभ्रमणकी चिंतना कहते हैं।

कृपालुदेवने आगे भी एक ८६ नंबरका पत्र लिखा है और पीछे भी एक १९५ नंबरका पत्र लिखा है, बीचमें ये पत्र १२८ नंबरका अभी चल रहा है। ८६ और १९५ नंबरमें एक ही बात है। जिस जीवको मुक्त होनेके मार्गकी इच्छा उत्पन्न हुई हो, उसको धर्मसाधन करनेके सभी विकल्पोंको छोड़ करके, उसको सबसे पहले यही बात विचारमें आनी चाहिये या महसूस होनी चाहिये कि मैं परिभ्रमण कर रहा हूँ और मुझे जैसे-कैसे भी इससे मुक्त होना है। ऐसी बात उसके चित्तमें, उसके अभिप्रायमें उसके विचारमें आनी चाहिये। ऐसा हुए बिना किसीको मार्ग सूझता नहीं, उपाय सूझता नहीं और इतना ही नहीं मार्ग किस दिशामें है उसका भी पता, अल्प भी पता नहीं चलता, बहुभाग जीव इस क्रममें आये बिना, ऐसी चिंतनामें आये बिना, अपने-अपने संप्रदायमें जो भी क्रियाएं चलती हैं, जो भी रिवाज, रूढ़ि, जो भी साधन माने गये हैं उन्हीका अनुसरण करता है। मगर इसका कोई पारमार्थिक फल माने आत्म-कल्याणवाला फल नहीं आता। इसलिये कृपालुदेवने निष्कारण करुणासे इस बातकी प्रसिद्धि की है, कि सब विकल्पोंको छोड़करके पहले यह विकल्प होना जरूरी है और वास्तविकता भी इस मार्गकी यही है कि पहले ऐसा ही होता है (और) वह जीव ही मोक्षमार्ग तक पहुँचता है। जिसको नहीं होता है वह मोक्षमार्ग तक भी नहीं पहुँचता है। वह चिंतना कैसी होती हैं ? इसका वर्णन चार पेराग्राफमें यहाँ पर कृपालुदेवने किया है। सुबह पहला पेराग्राफ चला था। संक्षेपमें फिरसे ले लें !

``**अंतर्ज्ञानसे स्मरण करते हुए ऐसा कोई काल ज्ञात नहीं होता अथवा याद नहीं आता कि जिस कालमें, जिस समयमें इस जीवने** (माने हमारे जीवने) **परिभ्रमण न किया हो।**'' अनंतकालसे यह जीव परिभ्रमण करता आया

है। भवभवांतर (से) दु:खी होता-होता, वर्तमानमें अभी मनुष्यभवमें हमारा जीव (आया है) पूर्वके कालमें काफी जन्म-मरण, अनंत जन्म-मरण किये हैं और इसका कारण संकल्प-विकल्प है। कई प्रकारके संकल्प-विकल्प किये हैं, और इस कारणसे वह अपनी आत्म-शांतिको भूला हुआ है।

आत्मशांतिके विषयमें (सुबह) थोड़ा स्पष्टीकरण चला था कि धर्मसाधन करनेवालेको मानसिक शांति मिलती है। चाहे हिन्दु हो, चाहे मुसलमान हो, चाहे खिस्ती हो, चाहे जैन हो, चाहे बौद्ध हो, (सब) अपने-अपने धर्मस्थानमें जाते हैं, वहाँ कुछ न कुछ क्रियाएँ होती हैं, जो मंद कषायरूप होती (हैं) और तब कषायकी मंदता होनेसे मानसिक शांति भी होती है। संसारके कार्योंमें मानसिक अशांति होती है और धर्मस्थानोंमें मानसिक शांति होती है। अशांतिकी बराबरीमें शांति होती है, (तब) जीव संतुष्ट हो जाता है कि चलो बार-बार इधर आना चाहिये तो थोड़ी शांति मिलती रहेगी। फिर क्रिश्चयन चर्चमें सन्डे के सन्डे जायेगा और मुसलमान मस्जीदमें जुम्मे के जुम्मे जायेगा। जुम्मे के जुम्मे माने शुक्रवार, उसको जुम्मेका वार बोलते हैं। सबको ऐसा ही अनुभव होता है कि यहाँ आते हैं तो ठीक लगता है, इसलिये वह रुटीन (Routine) हो जाता है और वैसे चलता रहता है, लेकिन इसमें आत्मशांति नहीं है। संसारके कार्योंके वशात् और अयथार्थ धर्मसाधनके वशात् आत्मशांतिमें जीव भूला हुआ है।

यहाँ कृपालुदेवका कहनेका अभिप्राय यह है कि जिसको आत्मशांति चाहिये उसके लिये यह बात है। जीव आत्मशांतिके विषयमें भूला हुआ है कुछ संकल्प करके, कुछ विकल्प करके, कुछ भी करके भूला हुआ है। संसारके बहुभाग जीवोंने तो पंचेन्द्रियोंके विषयमें मानसिक शांतिका अनुभव किया, तो कुछ लोगोंने धार्मिक क्रियाओंमें मानसिक शांतिका अनुभव किया। पंचेन्द्रियोंके विषयमें जो शांति होती है उसको मजा कहते है, मजा आता है, (एन्टरटेईनमेन्ट) Entertainment और फिर धर्मस्थानमें भी Entertainment जैसी ही बात हो जाती है। क्योंकि (वह भी) एक मानसिक शांति प्राप्त करनेका तरीका है और कुछ भी नहीं है।

जिनेन्द्रदेवका मार्ग कहो या ज्ञानीपुरुषका मार्ग कहो, कृपालुदेव (उसे) ज्ञानीपुरुषका मार्ग कहते हैं। इसी कारण से तो आज जिनमार्गके नाम से अनेक संप्रदाय चलते हैं; हमारे जैनके नाम से भी (अनेक संप्रदाय चलते हैं) जिसमें ज्ञानी अलग पड़ते हैं, वे संप्रदायमें शामिल नहीं होते। ज्ञानी संप्रदायमें शामिल नहीं होते क्योंकि मानसिक शांतिमें कषायकी मंदता है जो चारित्रमोहकी मंदता है जब कि ज्ञानीके मार्गमें या जिनेन्द्रके मार्गमें सबसे पहले दर्शनमोहकी मंदताका उपाय है। (इसलिये) वह मार्ग थोड़ा अलग पड़ता है। दर्शनमोह मंद हुए बिना दर्शनमोहका अभाव होकर सम्यक्दर्शन नहीं होता, और इसमें जो चारित्रमोह मंद होता है वह सम्यक् प्रकारसे (मंद) होता है।

जबकि जिसका दर्शनमोह वैसाका वैसा रहे और चारित्रमोहको जो मंद करता है, उसका चारित्रमोह कुछ काल तक Temporary मंद होता है, फिर तीव्र हो जाता है क्योंकि मोहकी जड दर्शनमोहमें है, चारित्रमोहमें नहीं है। मोहका एक पेड़ है, उसके मूलमें दर्शनमोह है, बाकी जो पत्ते हैं, फूल-फल हैं वह चारित्रमोह है। मूल वैसा का वैसा रहता है, और पत्ते कोई काटते हैं तो फिर नये पत्ते आ जाते हैं। हम गुजराती में *'पांगरे छे'* ऐसा कहते है। (वैसे

यह) मोहका पेड़ पनपता है, क्या होता है ? हिन्दीमें पनपता है, ऐसा कहते हैं, क्योंकि मूलमें सिंचन चालू रहता है। थोड़े पत्ते (अर्थात् चारित्रमोहके पत्ते) कोई काटता है त्याग करके या कुछ भी करके लेकिन फिर (नये) पत्ते लग जाते हैं। इसलिये यह सही उपाय नहीं है और यह सही क्रम भी नहीं है।

इस परिभ्रमणकी चिंतनामें सबसे पहले, व्यवस्थित योजनापूर्वक, दर्शनमोह पर घाव पड़ता है, मिथ्यात्व पर घाव पड़ता है, कृपालुदेवने यह बात योजनाबद्ध की है, सारा २५४ नंबरका पत्र तो बिलकुल इसी पर ही लिखा गया है। तो यह १२८ (नंबरके पत्रमें) जो मुमुक्षुता प्राप्त हुई, वहाँ से आगेका विषय २५४ पत्रसे चालू होता है और स्वरूपका निर्णय होवे, पहचान होवे- तब जो स्वरूपसन्मुखता होती है - वहाँ तक का क्रम उसमें लिया है। कि जिस स्वरूपसन्मुखताके बाद तो अल्प कालमें स्वानुभूति प्राप्त होती है और स्वानुभूतिकी उपलब्धि होनेसे मोक्षमार्गमें प्रवेश होकर के मोक्ष तक की प्रक्रिया स्वयं चलती है। क्यों ? कि वहाँ मोहकी जड़ कट जाती है फिर जो हरे पत्ते हैं वे कुछ काल तक रहेंगे, फिर अपने आप सूख जायेंगे, सुखाना नहीं पड़ेगा - सूख जायेंगे।

यह जिनेन्द्रदेवका मार्ग है, लेकिन, लोग जानतें नहीं हैं, जिनमार्गके नाम से दूसरी दूसरी बातें चलती हैं, यह क्रम कहीं नहीं है इसलिये ज्ञानीने इस क्रमका बोध किया, इसलिये '**ज्ञानीका मार्ग**' ऐसा बताया और कृपालुदेवने इसी ग्रंथमें अनेक जगह मुमुक्षुको '**ज्ञानीके मार्ग**' पर चलनेकी शिक्षा दी है। अपनी इसी बात पर वजन दिया है। इसका मतलब यह है कि तुम अपनी मतिसे, मनमानी रीतिसे धर्मसाधन मत करना। जैसे ज्ञानी कहतें हैं, वैसे ही करना (अर्थात्) ज्ञानीके मार्ग पर चलना। और यह जरूरी भी है, बहुत जरूरी है। जैसे कोई गंभीर शरीर रोग उत्पन्न होता है और मरीज़को (होस्पिटलाइझ) Hospitalize किया जाता है (तब) उसको डॉक्टरकी सूचनामें, डॉक्टरकी परेजमें ही Compulsory रहना पड़ता है। अगर उसको छूटना है, रोग मिटाना है तो Fully surrender (पूरा समर्पित) होना पड़ता है, तो यह भवरोग मिटानेके लिये भी उसके तजज्ञ है वह ज्ञानी है। उन्होंने अपना भवरोग मिटाया है और उनकी सूचनामें ही Surrender होकर चलना पड़ेगा (बादमें) जैसा कहे वैसा करना पड़ेगा, अपनी मनमानी नहीं चलेगी। अपनी मनमानी रीतिसे तो अनंतकालसे धर्मसाधन करता आया है, "**यमनियम संजम आप कियो, पुनि त्याग बिराग अथाग लह्यो,**" बहुत किया तो इससे तो कोई (काम) होनेवाला है ही नहीं।

प्रश्न : अनंतकालमें समझ की होगी ?

पू.भाईश्री : हो सकता है। समझ की होगी लेकिन अमलीकरण नहीं किया तो समझ क्या कामकी ? समझ दो प्रकारकी है, एक स्वलक्षी और एक परलक्षी। जो आत्मलक्षी समझ है, उसमें आत्मा अनुसरण करने लगता है। जो समझ है उसको वह अपने परिणमनमें लागू करता है, (Apply) करता है। परलक्षी समझवाला समझमें ही संतुष्ट हो जाता है और (वह) अमलीकरणमें नहीं आता; तो (यह बात) अनंतकालमें परलक्षी ज्ञानमें समझी होगी, (मगर) स्वलक्षी ज्ञानमें समझी जाये (तो तुरंत) अमलीकरण चालू होगा। जैसे हमलोग इस मार्गकी, ज्ञानीके कहे हुए क्रमकी चर्चा करते हैं, लेकिन जो मुमुक्षु परलक्षी ज्ञानमें समझ करता है वह अमलीकरणमें नहीं आता (है) और स्वलक्षी ज्ञानमें आता है वह अमलीकरणमें आता है। (तो) इस

तरह दोनोंमें बहुत फर्क है। कहलानेमें तो दोनों मुमुक्षु ही कहलाते हैं। एक ही शास्त्रको पढ़ता है, एक ही सत्संगको Attend करता है। और मानो कहता हो कि आप भी मुमुक्षु हैं, मैं भी मुमुक्षु हूँ, क्या फर्क हो गया ? लेकिन बहुत फर्क है। इस तरह परलक्षीवाला क्या मानता है-कि यह भी मेरे जैसा है, यह भी मेरे जैसा है, यह भी मेरे जैसा है, - लेकिन ऐसा नहीं है। जो स्वलक्षवाला है वह परलक्षवालेसे कहीं भी बेहतर है। बहुत बेहतर है। यह बात खयालमें रखनी चाहिये। क्योंकि वह अमलीकरणमें आया, और अगर (उसने) क्रममें प्रवेश कर लिया, तो उसके हाथमें सारी ज्ञानीके मार्गकी लाइन (सूझ) आ जाती है। यह चिंतना होनेसे क्या करना इसकी सूझ आती है। इसके पहले कोई सूझ नहीं होती। (यह बात) १९५ (पत्र) में लिखी है। यह जो अंतरकी सूझ है, वह अपने आप मार्ग करती है, अंदरमें ही मार्ग करने लगती है। और जिसको सूझ नहीं है वह अंधेरेमें खड़ा है। फिर वह चाहे कुछ भी करता हो वह Jumping in the dark, Firing in the dark, वह अंधेरेमें सब कुछ करता है, उसको पता नहीं है (कि) मैं क्या करता हूँ ? कहाँ जाउंगा? किधर जाऊँगा ? कुछ पता नहीं, यूँही करते रहता है, लेकिन अंधेरेमें खड़ा है। स्वलक्षी समझ और परलक्षी समझवाले मुमुक्षुमें इतना बड़ा अंतर है। मुमुक्षु मुमुक्षुमें बड़ा अंतर होता है।

प्रश्न : परलक्षी समझमें कैसे भाव चलते हैं ?

पू. भाईश्री : विरुद्ध भाव चलते हैं, उसमें वह क्या करता है ? बराबरी करता है यह भी मुमुक्षु है, मैं भी मुमुक्षु हूँ, यह भी पढ़ता है - सुनता है, मैं भी पढ़ता हूँ - सुनता हूँ, वह भी मंदिर जाता है, मैं भी मंदिर जाता हूँ, उसकी भी बाहरकी क्रिया तो बराबर सी लगती है न ! (लेकिन) अंदरमें बहुत बड़ा फर्क है, योग्यतामें बहुत बड़ा फर्क पड़ जाता है, यह अंतर (फर्क) भी समझना चाहिये।

वास्तवमें तो जो स्वलक्षमें नहीं आया है, उसको कैसे स्वलक्षमें आना ? (यह बात) उसके पाससे समझनी चाहिये। किसके पाससे? कि जो स्वलक्षमें आकरके वेदनामें आया हो उसके पास से, यह बात उसको समझनी चाहिये कि आपको क्या हुआ ? कैसे हुआ? कैसे (वेदनामें) आ गये? हमलोग कोशिश करते (हैं लेकिन) आ नहीं पाते, क्या बात है ? इतनी स्वयंको गरज होनी चाहिये तभी तो स्वलक्षी होनेका मौका है, वरना ऐसे ही चलेगा कि हम सब साथमें सत्संग करते हैं, उसमें क्या हो गया?

दूसरी बात यह है कि परलक्षवालेको दूसरेके दोष बहुत जलदी नजर आते हैं। उसको गुणग्राहीपना कम होता है, या नहीं के बराबर होता है और दूसरे जो मुमुक्षु होते हैं वे कोई सर्वगुणसंपन्न तो होते नहीं। सर्वगुणसंपन्न तो परमात्मा जिनेन्द्रदेव हैं, ज्ञानी भी नहीं (है)। तो (जब दूसरेके) दोष उसको नजर आते हैं, (तब) उसकी मुख्यता हो जाती है और अपने दोष तो दिखते नहीं कि इससे भी ज्यादा (दोष) हमारेमें भरे हैं, वह तो दिखता नहीं। यह गड़बड़ होती है। ऐसी भी कई प्रकारकी जो (विडम्बना) होती है उसका इलाज क्या ? कि Under strict supervision जो Hospitalize होते हैं, उस तरह से सत्संगमें रहना और अपना दोष देखते जाना, कहते जाना, बताते जाना और दूसरेको बतलानेके लिये विनंती भी करते जाना, कि मेरे कोई दोष हो तो बतला दीजिये, मुझे निकालना है। तभी तो स्वलक्षमें आयेगा। यह परिणामोंकी चर्चा इस कारणसे है कि सारे

दिनमें आपने अपने, लक्षसे, स्वलक्षसे अपने परिणमनमें कितनी बातें देखी? क्या-क्या देखा? और दूसरा भी अपना दोष दिखाता है तो अपनेको सुहाता है कि नहीं सुहाता है ? यह भी पता चलेगा।

इस तरहसे जो ज्ञानीका मार्ग है उसमें दर्शनमोहकी ताकत तोड़नेकी एक योजना है, उस योजना अनुसार अगर कोई चलता है तो उसका दर्शनमोह एकदिन अवश्य तूटता है और वह जीव सम्यक्दर्शनको प्राप्त करके मोक्ष मार्गमें चलेगा, आ जायेगा। तो उसका सबसे प्रथम जो चरण है माने प्रथम आचरण करने लायक कोई बात है तो यह परिभ्रमणकी चिंतना है। उसमें वह आत्मशांतिके लिये प्रयास करता है क्योंकि खुद आत्मशांतिके विषयमें ही भूला है। क्या लिखा है ? कि ``**इससे `समाधि' को न भूला हो**'' समाधि माने आत्मशांति।

हमारे श्री निहालचंद्रजी सोगानीजीका इस विषयमें एक जीवंत उदाहरण है कि उनको सत्संग प्राप्त नहीं था इसलिये उन्हें इस विषयमें क्या होना, क्या नहीं होना, कुछ पता नहीं था। संप्रदायके अनुसार सब क्रियाएँ करते रहते थे, लगनसे करते थे, इसलिये बहुत करते थे, शास्त्र भी सारे दिन पढ़ते रहते थे, कभी किसीने योगकी क्रिया - यह जो बताते हैं न ध्यानशिबिरमें? वह बता दी तो वह भी बहुत की, घंटो तक की। योगकी क्रियामें भी उलझे थे, शास्त्रस्वाध्यायमें भी बहुत लगे (रहते) थे और जिनेन्द्रपूजामें भी बहुत लगे रहते थे, छ: (६) छ: घंटा (लगे रहते थे)। कितना? ६-६ घंटा। लेकिन कोई बात योजनाबद्ध नहीं थी। फिर भी होनहार अच्छा था तो उनकी आत्मशांतिकी खोज चालू रही। धर्मसाधन करते हुए कभी वे मंदकषायमें संतुष्ट नहीं हुए। इसलिये वे समाधिके विषयमें भूले नहीं, क्या? To the Point क्या बात है ? कि जीव समाधिके विषयमें भूला है, माने आत्मशांतिके विषयमें भूला है। उनको आत्मशांति नहीं मिलती थी। आत्मशांतिकी पिपासा थी और पिपासाका ऐसा स्वभाव है, एक प्रकारकी तृषा है न ! तीव्र तृषाको पिपासा कहते हैं। उसका ऐसा स्वभाव है कि जितना काल जाय, उतनी पिपासा बढ़ती जाय और इस मार्गमें यह एक बहुत अच्छा लक्षण है वरना क्या होता हैं कि मुमुक्षु भी यह पढ़ते-पढ़ते, सुनते-सुनते, ठंडे हो जाते हैं और संतुष्ट हो जाते है कि हमने इतने साल तक ऐसा स्वाध्याय किया और अब हमको बहुत गुस्सा नहीं आता है, हमारेमें थोड़ी सरलता भी आ गई है, यह भी हुआ है, हम निवृत्ति भी ले रहे हैं, ऐसा भी नहीं करते, पहले वैसा करते थे अभी वैसा नहीं करते हैं, इस प्रकारके संतुष्टपनेमें सब कुछ आ जाता है। गिनती करनेमें लग जाता है। ये गिनती करना बहुत बुरा लक्षण है। यह दर्शनमोहको बढ़ानेवाला परिणाम है। बहुत बुरा इसलिये है कि दर्शनमोहको बढ़ानेवाले परिणाम हैं। ऐसा हो जाता है, (लेकिन) ऐसा नहीं होना चाहिये। पू. सोगानीजीको पिपासा बढ़ती ही गई, पिपासा बढ़ती गई। जैसे पानी नहीं मिलनेसे कोई तृषावान मर जाता है, उसका प्राण छूट जाता है, वह तृषाकी चरम सीमा है, ऐसा उनका भी हुआ। आत्मशांतिकी पिपासामें उनको लगा अगर मुझे आत्मशांति नहीं मिली तो मेरा ज़िंदा रहना मुश्किल हो जायेगा। यह संकल्प-विकल्पकी अशांति है, भले (ही) धर्मके विषयमें संकल्प विकल्प चलते थे, फिर भी वह अशांति उतनी थी कि '*मेरा ज़िंदा रहना मुश्किल है*। ' उनके खुदके शब्दमें यह बात है, या तो

विकल्प फटकरके आत्माकी शांति-निर्विकल्पता हो जायेगी, या तो देह छूट जायेगा। दोमें से एक होनेवाला था - या तो विकल्प फटकरके निर्विकल्पता हो जायेगी, या तो देह छूटकरके प्राण छूट जायेगा; देह छूटने -प्राण छूटने से तीसरा कुछ होनेवाला नहीं था। इतनी हद तक आत्मशांतिकी चाहत आई तो कु दरतने व्यवस्था बिठाई, और वे फौरन सोनगढ़ चले आये और ज्ञानीपुरुषका योग हो गया। सत्संग मिल गया, प्रत्यक्ष योग मिला और एक ही दिनमें उन्होंनें बोधको प्राप्त कर लिया।

कृपालुदेवने ७५१ नंबरके पत्रमें आत्मसिद्धिमें जो तीन प्रकारके समकित कहे हैं, वे तीनों प्रकारके समकित एक (ही) दिनमें प्राप्त कर लिये - देखो ! (प्रत्यक्ष योगका होना) बहुत आवश्यक है, और यह वहाँ राजस्थानमें नहीं था। आत्मधर्म जो यहाँ से निकलता है वह दैववशात् कहो, भाग्यवशात् कहो, उनको भेज दिया गया और वे सोनगढ़ चले आये। एक ही दिनमें प्रत्यक्ष ज्ञानीका परिचय किया, पहचान की; एक ही दिनमें स्वरूपकी पहचान की और उसी दिनमें निर्विकल्प सम्यक्दर्शनको भी प्राप्त कर लिया। तीन समकित एक दिनमें (प्राप्त) कर लिये। (उसका कारण यह कि उनकी) आत्मशांतिकी जो तृषा थी वह चरम सीमाको प्राप्त हुई थी।

अपने पत्रमें जो बात चल रही है वह To the point बात है कि जीव धर्मसाधन करते हए, या नहीं करते हुए, समाधि माने आत्मशांति को भूला हुआ है। इसलिये सभी मुमुक्षुओंमें यह लक्षण (होना) चाहिये- (कि) मुझे मेरी आत्मशांति नहीं मिली है, मुझे मेरी आत्मशांति नहीं मिली है - कुछ भी हुआ हो, लेकिन (मुझे तो) मेरी आत्मशांति चाहिये। कुछ भी हुआ हो मुझे गिनना नहीं है। क्या ? मुमुक्षुकी भूमिकामें जो कुछ हुआ होगा उसे वह गिनेगा ही नहीं, मुझे तो सिर्फ आत्मशांति चाहिये। (अगर) ऐसी चाहत नहीं रही तो आत्मशांतिके लिये प्रयास बंद हो जायेगा। प्रयास ही नहीं होगा, तो फिर तो वह Routine में आ जायेगा। चलो रोज स्वाध्याय करो, सत्संग करो, पढ़लो, सुनलो, यह करलो, वह करलो। संप्रदायमें सब होता ही है ऐसे ही यहाँ हो जायेगा। वहाँ संप्रादयमें होता ही है, जब कि हम (तो) संप्रदायमें गये बिना (ही) संप्रदायमें आ जायेंगे।

इसलिये यह शब्द जो कृपालुदेवने लिखें है वह काफी अनुभवसे, अनुभवकी गहराईसे लिखे हैं। तो (लिखते हैं कि) वह आत्मशांतिको नहीं भूला हो ऐसा कोई काल नहीं गया। ``**निरंतर यह स्मरण रहा करता है**'' वह बात भुलाई नहीं जाती। उसका समरण रहा ही करता है कि मैंने कितनी बड़ी गलती की और इसके फलमें परिभ्रमण किया, इसका पश्चाताप (होता है)। दोषका पश्चाताप हुए बिना पवित्रता नहीं आती। अनंतकाल से जीव दोषित है, उसको सबसे पहले उसका पश्चाताप हुए बिना पवित्रताकी दिशामें एक कदम भी वह आगे नहीं बढ़ सकता है। परिभ्रमणकी चिंतनामें ये बात होती है, ``**और यह महावैराग्यको देता है।**'' यह स्मरण है, वह महावैराग्यको देता है; यानी बहुत उदासीनता आती है।

जीवको नुकसान करनेवाले परिणामोंमें अनेक प्रकारके परिणाम हैं। उसमें अपेक्षावृत्ति मुख्य है। क्या है ? यह चाहिये, वह चाहिये, यह चाहिये, वह चाहिये - कमसे कम आपने मेरे सामने देखा क्यों नहीं, वह भी एक अपेक्षा है। आपने मुझे यह पूछा क्यों नहीं-वह भी एक अपेक्षा है। जीवको यहाँसे लेकरके कोई गिनती

नहीं कर सके (उतनी) अपेक्षावृत्ति होती है यह अपेक्षावृत्ति एक ऐसी अग्नि है कि (जो) जीवको जलाती है और ज्यों-ज्यों अपेक्षित चीज मिलती है वह अग्निमें घी डालनेके बराबर होता है। उसको कभी शांति नहीं मिलती। यह चिंतनामें आनेसे अपेक्षावृत्ति खलास, खतम होती है। देखो ! दर्शनमोहका अनुभाग तो टूटता ही है , साथ-साथ उदासीनताके कारणसे अपेक्षावृत्ति भी मर जाती है। इतनी उदासीनता आती है। उदासीनता और अपेक्षावृत्ति आपसमें प्रतिपक्षमें है, विरुद्धमें है।

प्रश्न : अपेक्षावृत्ति माने तृष्णा ?

पू. भाईश्री : तृष्णा उससे ज्यादा है, बहुत अपेक्षावृत्ति बढ़ जाती है तब उसको तृष्णा कहते हैं। यहाँ तो छोटी-मोटी अपेक्षा भी नहीं होनी चाहिये।

प्रश्न : दूसरेसे सरलता की अपेक्षा रखना वह भी असरलता है ?

पू. भाईश्री : देखो ! मैं सरल हूँ, ये बात सरलतावालोंको नहीं होती। वही असरलता है और दूसरेसे सरलताकी अपेक्षा रखना तो इससे भी ज्यादा असरलतावाली बात है। (वह तो) बहुत असरलतावाली बात है। सरलतावाली कोई बात नहीं है। सरलता अलग चीज है। हमारी सरलता तो ऐसी होनी चाहिये कि मैं दूसरों से क्यों कुछ अपेक्षा रखूँ ? क्यों रखूँ मैं ? मुझे नहीं रखनी है- एक बात, दूसरी बात कि जिसको उदासीनता होती है, उसको अपेक्षा होती ही नहीं (है)। वह तो चिंतामें डूबा हुआ होता है कि मेरे परिभ्रमणका क्या ? मेरे परिभ्रमणका क्या ? मेरा दर्द कैसे मिटे- भवभ्रमणका दर्द/भवरोग मेरा कैसे मिटे ? उसकी चिंतामें जो पड़ा है, उसको अपेक्षावृत्ति नहीं आयेगी। वह उदास,उदास, उदास.....उदास हो जाता है। क्या हो जाता है ? बहुत उदास हो जाता है। यहाँ तक कि खानेमें, पीनेमें भी उसको कहीं रस नहीं आता (है)। जो हरहंमेशका Routine (रुटिन) (दैनिक क्रियाएं हैं) - खाना, पीना और जो हरहंमेशका रस लेनेका Routine भी बन गया है, क्या ? खाने-पीनेका भी और रस लेनेका भी यही Routine है। वह Daily (दैनिक) Routine की जो क्रियाएं है उसमें उदासीन हो जाता (है)। उदासीन होनेसे, इस लाइनमें आनेके लिये अपेक्षावृत्ति जो कि अवरोधक थी, वह (अवरोधक कारण) दूर हो गया, और अवरोध मिटा तो मार्गमें आनेमें सरलता हुई।

इस चिंतनामें वैराग्यके कारणसे कई प्रकारके पहलू हैं जो कि अपने आप खड़े होते हैं। यह इस क्रममें होनेवाले आनुसंगिक परिणाम हैं - यानी इस परिणामके साथ-साथ दूसरे-दूसरे Co-ordination (मेल) होने लगते हैं, जैसे चिंतना वैराग्यको जन्म देती है, वैराग्य अपेक्षावृत्तिको मिटाता है। ऐसे Co-ordination (मेल) खड़ा हो जाता है और अवरोध मिटता है। इसीलिये पहले भवभ्रमणके विषयमें और इसके कारणरूप अपराधके विषयमें पश्चाताप होता है और भविष्यमें ऐसा होगा तो क्या होगा इसकी चिंता होती है, वेदना आती है और इसके नाश होनेके उपायके लिये वह बहुत छटपटाता है, तरसता है, ऐसी परिस्थिति पैदा होती है।

प्रश्न: अपेक्षा भाव भ्रांति है ?

पू. भाईश्री: हाँ, वह भ्रांति है, वह भ्रांति उदासीनता में आने पर ढीली हो जाती है। अपेक्षा तो सुखबुद्धिके कारणसे है। जितनी भी अपेक्षाएं हैं, इसके पीछे अभिप्राय सुखबुद्धिका है, आधारबुद्धिका भी है, और भोक्ताबुद्धिका भी है। क्योंकि सुख भी भोगना है न ! सुख भी

भोगना है तो यह भोक्ताबुद्धि होती है उससे कर्ताबुद्धि भी होती है। यह सब गड़बड़ एकसाथमें होती ही है। इस प्रकार यह उदासीनता आनेसे उसमें ढीलापन आता है। यह सब जो विपरीत अभिप्राय है, बुद्धि माने अभिप्राय (वह) सब ढीले पड़ते हैं। नीवमें जो काम होता है वह बहुत महत्त्वपूर्ण काम होता है। जिसको परिभ्रमणकी चिंतना और वेदना हुई इसका मतलब यह हुआ कि उसको परिभ्रमण नहीं चाहिये। तो अभिप्रायकी दृष्टिसे सोचे तो उसका संसार-परिभ्रमणका अभिप्राय अभी जानेवाला हो गया और अभिप्रायकी दृष्टिसे तब मुक्त होनेका अभिप्राय हुआ। यह अभिप्राय विषयक Change हो गया है। सभी संसारियोंका संसार बढ़ानेका, (और) भोगनेका अभिप्राय है - (जो) मोक्षसे विरुद्ध (है) और उसी अभिप्रायसे वह धर्मसाधन करता है इसलिये उसके फलमें उसको संसार ही संसार फलता है। सबसे पहले इस अभिप्रायकी फेरबदली होना जरूरी है और नीवमें यह अभिप्राय बदलता है कि जिसके फलमें निर्वाणपद आयेगा। अभिप्रायको बदले बिना, परिणाम बदलनेका, योग्यता बदलनेका कोई अवसर आता नहीं है।

प्रश्न: आग्रह भावमें भी अपेक्षा है ?

पू. भाईश्री: आग्रहमें-जब अपेक्षा तीव्र होती है तो आग्रह होता है। जब अपेक्षा तीव्र होती है तो वह अपेक्षित चीज मिलनी ही चाहिये, नहीं मिली तो इसके लिये छटपटाहट होती है, और तूफ़ान खड़ा होता है, कषाय तीव्र हो जाता है; आग्रहमें कषाय तीव्र हो जाता है, आग्रह होता है तब यह अपेक्षा और तीव्र हो गई, इसकी तारतम्यता बढ़ गई होती है। कृपालुदेवने चारों पैराग्राफोंके अंतमें यह बात लिखी है।

इसका मतलब यह है कि परिभ्रमणकी चिंतना इस-इस प्रकारसे चलती है और तब वैराग्य अनिवार्यरूपसे आता ही है। वैसे तो लौकिक चिंतामें भी यह हालत होती है। कितना भी अपने भानेवाले अच्छे भोजन पर बैठे हो, खाते हो और तब अगर इन्कमटेक्सकी (Income Tax) Raid आ जाये, (तो) क्या होगा ? खानेका रस वैराग्यमें परिवर्तित हो जायेगा, रस उड़ जायेगा- (परिणाम) इन्कमटेक्सकी Raid का सामना करनेमें चले जायेंगे। क्यों? एक चिंता खड़ी हो गई। जब कि यह तो एक कषाय है। इन्कमटेक्सकी Raid की चिंता होना वह भी एक कषाय है जो दूसरे कषाय को मारता है - खानेमें जो रस आता था वह भी कषाय था। जब एक कषाय दूसरे कषायको मार सकता है तो कषायका अभाव करनेवाली उपायरूप ऐसी (वेदना) कषायको नहीं मारे ऐसा कैसे बनेगा ? वह तो मारे ही मारे, इसमें क्या आश्चर्य है? उसका उपाय ही यही है। यह तो दूसरे विषयमें कषाय परिवर्तित होता है इसकी बात है जबकि यहाँ तो अकषाय स्वभावमें जानेकी बात है। इसलिये इस चिंतासे तो वैराग्य आयेगा, आयेगा, और आयेगा ही, और यह वैराग्य चिंतनाकी यथार्थताको सूचित करता है, अगर वैराग्य नहीं आया तो उसमें कोई चिंता-चिंतना नहीं है, ऐसा समझ लेना। यह साथ-साथ इसका नाप करनेका लक्षण है। इसलिये कृपालुदेवने चारों (पेरेग्राफमें) यह बात ली है। दूसरा पेरेग्राफ कलके स्वाध्यायमें लेंगे।

*

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी विडीयो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. १३-B

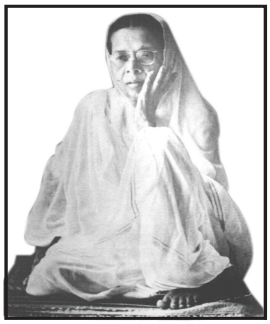

मुमुक्षु :- माताजी! तो उसका अर्थ यह हुआ कि जिसे अपने द्रव्य की दृष्टि हो अथवा निजात्मा को-ज्ञायक स्वरूप को पहचाने उसे, दूसरे अनन्त परमात्मा केवली हैं, ऐसा वास्तविकरूपसे नक्की हो सकता है। वैसे वर्तमान प्रत्यक्ष ज्ञानी को पहचानकर उनकी जिसको वास्तविक महिमा आती है उसे ही परोक्ष ज्ञानियों का और परोक्ष देव-गुरु-शास्त्र की सच्ची महिमा आती है। परन्तु जिसे प्रत्यक्ष सत्पुरुष की महिमा अथवा प्रत्यक्ष ज्ञानी कि महिमा नहीं आती, उसे वास्तविकरूपसे परोक्ष ज्ञानी या परोक्ष देव-गुरु-शास्त्र किसीकी सच्ची महिमा नहीं आयी है।

समाधान :- किसीकी नहीं आयी है। प्रत्यक्ष की (महिमा) नहीं आती, उसे परोक्ष की महिमा नहीं आयी है। जो एक को पहचानता है वह सबको पहचानता है।

मुमुक्षुः-और जैसे प्रारंभ यहाँ आत्मामें-से होती है, वैसे यहाँ भी वर्तमान प्रत्यक्ष ज्ञानीसे शुरुआत होती है।

समाधानः- प्रत्यक्ष ज्ञानीसे ही होती है। भगवान की पहचान कौन करवाता है? प्रत्यक्ष गुरु होते हैं वह पहचान करवाते हैं। वीतराग किसे कहते हैं, भगवान किसे कहते हैं, वह सब, जो प्रत्यक्ष ज्ञानी है, प्रत्यक्ष गुरु हैं वे पहचान करवाते हैं कि भगवान कैसे होते हैं? वीतरागी होते हैं। उनकी दिव्यध्वनि इच्छा बिना छूटती हो, भगवान आत्मा में समा गये हों, उन सबका स्वरूप जो प्रत्यक्ष गुरु हैं वे समझाते हैं। प्रत्यक्ष गुरु के बिना भगवान का स्वरूप भी सत्यरूपसे पहचाना नहीं जा सकता। इसलिये वह भगवान को पहचान नहीं सकता।

मुमुक्षु :- और स्वयं का जो भी मानादिक दोष है वह भी प्रत्यक्ष ज्ञानीसे जाता है, परोक्ष ज्ञानी की चाहे जितनी महिमा करे, परन्तु प्रत्यक्ष ज्ञानी मिलनेपर जो सहज भावसे दोष जाता है, वैसे परोक्ष ज्ञानी को स्वीकारे और प्रत्यक्ष ज्ञानी की महिमा नहीं आये तो दोष नहीं जाता ऐसा भी दिखता है।

समाधान :- जो परोक्ष को जानता है, खुद महिमा लाता है लेकिन उनका साक्षात् परिचय नहीं है। इसलिये अपनी बुद्धिसे ही उसे सब करना रहता है। उसके दिमाग में जो बैठे उस अनुसार वह करता है और अपनी बुद्धिसे स्वीकारता है, अपनी बुद्धिसे आगे बढ़ता है, इसलिये उसे मार्ग दिखानेवाले या कोई अपनी बुद्धिसे आगे बढ़ता है और प्रत्यक्ष गुरु है वे मार्ग दिखाते हैं। उसका कोई दोष हो तो उसे कुछ कहते हैं। उसको खुद को कुछ विचार करना पड़ता है। इसलिये 'श्रीमद्' में आता है, 'मानादिक शत्रु महा, निज छंदे न मराय, जाता सद्गुरु शरणमां, अल्प प्रयासे जाय'।

अपने स्वच्छन्दसे मानादिक शत्रु का नाश नहीं कर सकता। गुरु के शरण में जानेसे सब सहज ही नाश हो जाता है। साधक को कैसे चलना, उसका मार्ग गुरु के उपदेश स्पष्ट हो जाता है।

मिथ्यात्व की गाँठ अनादि की पड़ी है। वह गुरु के उपदेश बिना टूटती नहीं। भ्रान्ति की गाँठ पड़ी है, स्वच्छन्द अनादिसे पड़ा है। वह गुरु के जोरदार उपदेशसे टूट जाता है। जो पात्र जीव होता है उसे।

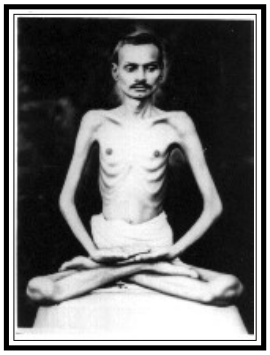

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

पत्रांक ३३४

बंबई, फागुन सुदी १०, बुध, १९४८

हृदयरूप श्री सुभाग्यके प्रति,
भक्तिपूर्वक नमस्कार पहुँचे।

'अब फिर लिखेंगे, अब फिर लिखेंगे' ऐसा लिखकर अनेक बार लिखना बन नहीं पाया, सो क्षमा करने योग्य है, क्योंकि चित्तस्थिति प्रायः विदेही जैसी रहती है इसलिये कार्यमें अव्यवस्था हो जाती है। अभी जैसी चित्तस्थिति रहती है, वैसी अमुक समय तक चलाये बिना छुटकारा नहीं है।

बहुत बहुत ज्ञानीपुरुष हो गये हैं, उनमें हमारे जैसे उपाधिप्रसंग और उदासीन, अति उदासीन चित्तस्थितिवाले प्रायः अपेक्षाकृत थोड़े हुए है। उपाधिप्रसंगके कारण आत्मा संबंधी विचार अखण्डरूपसे नहीं हो सकता, अथवा गौणरुपसे हुआ करता है, ऐसा होनेसे बहुत काल तक प्रपंचमें रहना पड़ता है; और उसमें तो अत्यंत उदास परिणाम हो जानेसे क्षणभरके लिये भी चित्त स्थिर नहीं रह सकता; जिससे ज्ञानी सर्वसंगपरित्याग करके अप्रतिबद्धरूपसे विचरण करते हैं। सर्वसंग शब्दका लक्ष्यार्थ है ऐसा संग कि जो अखण्डरूपसे आत्मध्यान, या बोध मुख्यतः न रखा सके। हमने यह संक्षेपमें लिखा है; और इस प्रकारकी बाह्य एवं अंतरसे उपासना करते रहते हैं।

देह होते हुए भी मनुष्य पूर्ण वीतराग हो सकता है ऐसा हमारा निश्चल अनुभव है। क्योंकि हम भी निश्चयसे उसी स्थितिको प्राप्त करनेवाले हैं; यों हमारा आत्मा अखण्डरुपसे कहता है; और ऐसा ही है, अवश्य ऐसा ही है। पूर्ण वीतरागकी चरणरज निरंतर मस्तकपर हो, ऐसा रहा करता है। अत्यंत विकट ऐसा वीतरागत्व अत्यंत आश्चर्यकारक है, तथापि यह स्थिति प्राप्त होती है, सदेह प्राप्त होती है, यह निश्चय है, प्राप्त करनेके लिये पूर्ण योग्य हैं, ऐसा निश्चय है। सदेह ऐसे हुए बिना हमारी उदासीनता दूर हो ऐसा मालूम नहीं होता और ऐसा होना सम्भव है, अवश्य ऐसा ही है।

प्रश्नोंके उतर प्रायः नहीं लिखे जा सकेंगे, क्योंकि चित्तस्थिति जैसी बतायी वैसी रहा करती है।

अभी वहाँ कुछ पढ़ना और विचार करना चलता है क्या? अथवा किस तरह चलता है? इसे प्रसंगोपात लिखियेगा।

त्याग चाहते हैं, परन्तु नहीं होता। वह त्याग कदाचित् आपकी इच्छानुसार करें; तथापि उतना भी अभी तो हो सकना सम्भव नहीं है।

अभिन्न बोधमयके प्रणाम प्राप्त हो।

*

द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से 'मिथ्या अभिप्राय का स्वरूप' सम्बन्धित पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के चयन किये गये वचनामृत

देव-शास्त्र-गुरु प्रति जो मचक है (शुभभाव है) वह भी नुकसान ही है; (किन्तु) इसमें जीव लाभ मान बैठता है; (ऊपर से) कहता तो है कि निमित्त से लाभ नहीं होता, लेकिन अभिप्राय तो लाभ का ही बना रखा है;(तभी)तो वहाँ से अपनी ओर आता नहीं। ५४८.

*

शास्त्र में ज्ञान करने का कहा तो कितने ही लोग चिंतन में ही रुक गये; और पुरुषार्थ करने का कहा तो विकल्प में ही रुक गये। (शास्त्र की उपदेशात्मक वचनपद्धति से चिंतन और विकल्प करने की कृत्रिम कार्यपद्धति बन जाना संभव है अतः यह ऐसे विपर्यास के प्रति ध्यान खींचा है कि स्वरूपलक्ष्य से चिंतन आदि सहज चले, वही यथार्थ है। अन्यथा कृत्रिमता करने से तो कृत्रिमता में ही रुकना होता है।) ५५७.

*

अज्ञानी को ऐसा रहता है कि - मैं कषाय को मंद करते...करते अभाव कर दूँगा; लेकिन ऐसे तो कषाय का अभाव होता ही नहीं - ''स्वभाव के बल बिना कषाय नहीं टलती।'' मैं कषाय को मंद करता जाऊँगा; सहनशक्ति बढ़ाता जाऊँगा तो कषाय का अभाव हो जाएगा; और ज्ञान में जो परलक्ष्यी उघाड़ है वो ही बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान हो जाएगा - ऐसा अज्ञानी मानता है। ५६५.

*

निश्चयाभास होनेका भय और प्रमाणज्ञान का लोभ रहने से सत्यमार्ग दिखाई नहीं देता। ६०२.

*

पोपट भूँगली को पकड़ने पर औंधा हो जाता है, गिर जाने के भय से (वह) भूँगली को छोड़ता नहीं है; यदि वह भूँगली को छोड़ दे तो उड़ जाए, क्योंकि उड़ना तो उसका सहज स्वभाव है। (परंतु अज्ञानवश) वह अपनी स्वाभाविकशक्ति को भूला हुआ है। वैसे ही अज्ञानी अपनी शक्ति को भूल कर परिणाम को पकड़े हुए है। (अज्ञानवश स्वशक्ति को भूल जाने से राग और राग के विषयभूत पदार्थों के अवलंबन/ आधार से अपना जीवन टिकता है, ऐसा परिणमन चलता है। जबकि स्वशक्ति के भान में ऐसी दीनता सहज ही छूट जाती है, इसीलिए ज्ञानदशा में किसी भी पदार्थ का त्याग सहज हो सकता है; जिसमें न आकुलता होती है और न ही भय रहता है।) ६२३.

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (फरवरी-२०२३) का शुल्क श्रीमती वंदनाबहिन रणधीरभाई घोषाल परिवार, कोलकाटा की ओर से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

जिज्ञासुओं के लिए निःशुल्क भेट

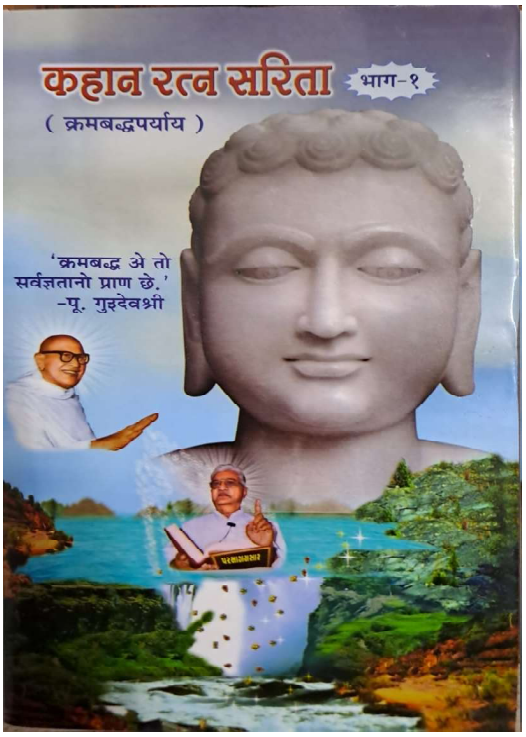

पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रवचन की पुस्तक '**सुविधि दर्शन**' को अभूतपूर्व प्रतिसाद मिला है, इसे देखते हुए उक्त दो पुस्तकों का सेट आत्मकल्याण इच्छुक जीवों को निःशुल्क भेंट दिया जायेगा। जिन तत्त्वरसिक जीवोंको इसकी आवश्यकता हो वे नीचे दिये गये वोट्सअप नंबर पर अपना नाम और पता पीनकोड़ सहित लिखकर भेजें।

१) **कहान रत्न सरिता (भाग-१)**
विषय-पूज्य गुरुदेवश्रीके खास-खास वचनामृत पर पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रवचन

२) **कहान रत्न सरिता (भाग-२)**
विषय-पूज्य गुरुदेवश्रीके '**क्रमबद्ध पर्याय**' के ऐतिहासिक विषय के वचनामृत पर पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रवचन

-संपर्क-
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
नीरव वोरा मो: ९८२५० ५२९१३

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2021-2023
RENEWED UPTO : 31/12/2023
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition :
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mejur processor 9374825041